इकाई 1 भारतीय काव्यशास्त्र : एक परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 काव्यशास्त्र : स्वरूप, अभिप्राय एवं परिचय

1.3 भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदाय

1.3.1 रस सम्प्रदाय

1.3.2 अलंकार सम्प्रदाय

1.3.3 रीति सम्प्रदाय

1.3.4 ध्वनि सम्प्रदाय

1.3.5 वक्रोक्ति सम्प्रदाय

1.3.6 औचित्य सम्प्रदाय

1.4 सारांश

1.5 अवधारणात्मक शब्द

1.6 उपयोगी पुस्तकें

1.7 बोध प्रश्न

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप :

- काव्य का अर्थ जान सकेंगे,
- काव्यशास्त्र का अर्थ जान सकेंगे,
- भारतीय काव्यशास्त्र के विकास एवं भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों के बारे में जान सकेंगे; और
- भारतीय काव्यशास्त्र के पारिभाषिक व अवधारणात्मक शब्दों के अर्थ जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

कवि जगत एवं जीवन से प्राप्त अपने अनुभव को अपनी प्रतिभा से रसमय एवं मनोरंजक बनाकर उसकी पुनःरचना करता है, इसी पुनर्रचना को काव्य कहते हैं। जीवन एवं जगत के परिवर्तन के साथ कवि की अनुभूति एवं प्रतिभा में भी परिवर्तन होता है, अतः काव्य में भी परिवर्तन होता है।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने काव्य की इस परिवर्तनशीलता को देखा, परखा एवं काव्य रचना की पद्धति, उसके प्रयोजन की व्याख्या की। इस परंपरा में आचार्यों द्वारा

BHDC-106.indd 7 19-03-2021 08:51:32

प्रस्तुत की गयी इस विवेचना को ही काव्यशास्त्र कहते हैं। इसका प्रारंभ भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से होता है। भरत मुनि ने इस ग्रन्थ में नाटक को केन्द्र में रखते हुए नाटक के अन्तर्गत ही 'काव्य' तथा काव्य के 'आस्वाद' की चर्चा की।

भरत मुनि की इस 'काव्यास्वाद' अर्थात रसानुभूति विषयक चर्चा को आगे विद्वानों ने बढ़ाया, जिससे विभिन्न मत सामने आये, तत्पश्चात रस के अतिरिक्त अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति व औचित्य सम्प्रदायों का उदय हुआ।

1.2 काव्यशास्त्र : स्वरूप, अभिप्राय एवं परिचय

मानव जीवन में काव्य की नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि काव्य मनुष्य के भीतर मूल्यों के अतिरिक्त प्रकृति, विभिन्न जीव-जन्तु व मनुष्यों के प्रति संवदेना जगाने का काम करता है। काव्य की रचना का उद्देश्य, काव्य के तत्व व काव्य-रचना-प्रक्रिया का सिद्धान्त या कहा जाय काव्य-परीक्षा की पद्धति काव्यशास्त्र है, इसके स्वरूप, स्थान, परिवेश व परिस्थितियों में अन्तर हो सकता है, पर मूल तत्व में अन्तर नहीं आता। इसका कारण यह है कि मानव मन की मूल प्रवृत्तियाँ – सुख, दुःख, हर्ष, शोक, क्रोध, विस्मय, घृणा, जुगुप्सा, भय आदि शाश्वत हैं।

भारतीय आचार्यों की परंपरा का शुभांरभ करने वाले भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में काव्य को पढ़कर या नाटक को देखकर पाठक या दर्शक के मन में जो लोकोत्तर आनन्द उत्पन्न होता है, उसे 'रस' की संज्ञा दी गयी है। काव्य के संदर्भ में यह आनन्द ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह कैसे निर्मित होगा? कैसे पाठक या श्रोता तक पहुँचेगा? इसी प्रसंग में रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य सम्प्रदायों का जन्म हुआ।

1.3 भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदाय

जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि भारतीय काव्यशास्त्र के कई सम्प्रदाय हैं, इसी संदर्भ में क्रम से उनका परिचय दिया जा रहा है –

1.3.1 रस सम्प्रदाय

भारतीय जीवन में 'रस' शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट के लिए किया जाता है। खाद्य पदार्थों में इसका अर्थ मधुरतम द्रव का द्योतक है, संगीत में कानों को प्राप्त होने वाला आनन्द है, चिकित्सा क्षेत्र में प्राणदायकता इसकी विशेषता है, अध्यात्म के क्षेत्र में परमात्मा को 'रस' से संबोधित किया गया है और साहित्य में काव्यास्वादन से प्राप्त आनन्द 'रस' है।

रस सिद्धान्त के प्रवर्तक भरत मुनि हैं। अपने 'नाट्यशास्त्र' शीर्षक ग्रन्थ में उन्होंने 'रस का विशद विवेचन किया है। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी जो भरत मुनि का समय है, तब से लेकर आधुनिक काल तक – भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, भोजराज, विश्वनाथ पण्डित राज जगन्नाथ, केशवदास, रामचन्द्र शुक्ल व डॉ. नगेन्द्र आदि ने रस सिद्धान्त का पल्लवन किया।

भरत मुनि ने रस सिद्धान्त को सूत्रबद्ध करते हुए कहा –

वभावानुभावव्याभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पतिः'

अर्थात विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। भरत मुनि के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ– विशेष रूप से स्थिति प्राप्त करना तथा

संयोग का अर्थ– विभावादि का स्थायी भावों से संयोग है। इन्हीं दो शब्दों 'संयोग' एवं 'निष्पत्ति' को ले कर आगे आने वाले विद्वानों में मतवैभिन्य रहा।

उत्पत्तिवाद

आचार्य भट्टलोल्लट ने 'संयोग' का अर्थ उत्पाद्य-उत्पादक सम्बन्ध तथा 'निष्पत्ति' का अर्थ उत्पत्ति मानकर कहा– वस्तुतः विभावादि तत्वों का संयोग स्थायी भाव से होता है। विभावों से स्थायी भाव का संयोग होने से रस की उत्पत्ति होती है, अनुभावों से उनकी प्रतीति तथा संचारी भावों से पुष्टि होती है। भट्टलोल्लट रस की स्थिति 'अनुकार्य' अर्थात सीता राम आदि ऐतिहासिक पात्रों में स्वीकार करते हैं। 'तद्रूपतानुसंधान' से दर्शक रस का अनुभव करता है।

अनुमितिवाद

आचार्य शंकुक ने संयोग का अर्थ– अनुमाप्य-अनुमापक सम्बन्ध तथा उत्पत्ति का अर्थ अनुमिति माना। इनके अनुसार, विभावादि अनुमापक तथा रस अनुमाप्य हैं। रस की स्थिति शंकुक भी मूल ऐतिहासिक पात्रों में ही मानते हैं। अभिनेता के कुशल अभिनय से दर्शक उसमें मूल पात्र का अनुमान कर लेता है। जैसे हम घोड़े का चित्र देखकर घोड़े का अनुमान कर लेते हैं उसी प्रकार पात्रों का अभिनय देखकर वह रस जो मूल पात्र में है– उसको अनुमान द्वारा नट पर आरोपित कर लेते हैं।

भुक्तिवाद

भट्टनायक ने पहली बार रसनिष्पत्ति का विवेचन काव्य को केन्द्र में रखकर किया। इन्होंने विभावादि को भोजक तथा रस को भोज्य माना और संयोग का अर्थ भोज्य-भोजक सम्बन्ध बताया एवं निष्पत्ति का अर्थ– भुक्ति' कहाँ भुक्ति के लिए वे 3 व्यापार निश्चित करते हैं। 1) अभिधा– इसके द्वारा शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है। 2) भावकत्व – अर्थबोध के पश्चात काव्यगत वस्तु हमारे हृदय में भावना या अनुभूति का उद्वेलन करने लगे यह भावकत्व है, अर्थात मूल ऐतिहासिक पात्र ऐतिहासिक व व्यक्तिगत विशेषताओं को छोड़कर सामान्य हो जाते हैं। 3) भोजकत्व– इस व्यापार में पाठक या दर्शक रस का भोग करता है। भोजकत्व का अर्थ रसानुभूति है। भट्टनायक ने रस की स्थिति दर्शक या पाठक में स्वीकार की।

अभिव्यक्तिवाद

अभिनवगुप्त ने संयोग का अर्थ व्यंग्य-व्यंजक सम्बन्ध तथा निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति माना। इनका मानना है कि रस व्यंग्य है और विभावादि, व्यंजक। काव्य को पढ़ने से भावों की उत्पत्ति, अनुमिति एवं भुक्ति नहीं होती बल्कि भाव व्यक्त होते हैं।

आचार्य विश्वनाथ रसात्मक वाक्य को काव्य मानते हैं। आनन्दवर्धन, महिमभट्ट, राजशेखर, पंडितराज जगन्नाथ, कुन्तक, भोजराज, रूय्यक, जयदेव आदि सभी ने रस के महत्व को स्वीकार किया है।

आधुनिक काल में पर्याप्त विमर्श के बाद अभिनव गुप्त की मान्यता ही स्वीकार की गयी, यह अवश्य है कि रस के वाक्य की आत्मा रूप में स्वीकृति आज नहीं है।

1.3.2 अलंकार सम्प्रदाय

अलंकार का अर्थ है, सुसज्जित करने वाला या जिससे सुसज्जित हुआ जाय। काव्यशास्त्र में अलंकार के इन दोनों अर्थों का प्रयोग हुआ है। भारतीय काव्य सम्प्रदायों

में रस के बाद प्राचीनतम सम्प्रदाय अलंकार का ही है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक और यमक इन चार अलंकारों की चर्चा हैं। छठी शताब्दी में भामह ने सर्वप्रथम अलंकार को काव्य की आत्मा घोषित किया अतः अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक भामह को माना जाता है। भामह ने वक्रोक्ति को समस्त अलंकारों का मूल और अलंकारों की संख्या 38 मानी। नवीं शती में उद्भट ने अलंकारों की संख्या 41 तक पहुँचायी। इनके पूर्व सातवीं शती में दण्डी ने अलंकारों की चर्चा की थी पर इनकी संख्या 35 ही बतायी थी। आचार्य उद्भट के समय के आसपास ही आचार्य उद्भट ने अलंकारों का वर्गीकरण किया और अलंकारों की संख्या 66 बतायी। इसी तरह 12वीं शती में रूय्यक, 13वीं शती में जयदेव, 14वीं शती में अप्पय दीक्षित आदि ने भी अलंकारों के बारे में चर्चा की तथा अलंकारों की संख्या 123 हो गयी। इन सभी ने काव्य में अलंकारों को काव्य का सर्वस्व स्वीकार किया और अलंकारों के बिना काव्य की स्थिति ही नहीं मानी। भामह तो सुन्दर स्त्री के मुख को भी आभूषण के बिना भूषित नहीं मानते, वामन की दृष्टि में अलंकार ही सौन्दर्य है और दण्डी काव्य के सौन्दर्यकारक धर्मों को अलंकार मानते हैं।

स्पष्ट है कि अलंकारवादी आचार्य अलंकार को काव्य का आधारभूत धर्म मानते हैं और अलंकार रहित काव्य की कल्पना भी नहीं करते।

1.3.3 रीति संप्रदाय

रीति का संकेत भरत के नाट्यशास्त्र में भी है। वे इसे प्रवृत्ति कहते हैं– जो नाना देशों के वेश– भाषा, आचार और वार्त्ता को व्यक्त करे वह प्रवृत्ति है। इसके चार भेद हैं – 1) आवंती, 2) दाक्षिणात्य, 3) पांचाली और 4) मागधी। रीति को दण्डी 'मार्ग' और वामन 'रीति' ही मानते हैं। भामह ने काव्य के दो भेद माने– वैदर्भ और गौड़। वैदर्भ को श्रेष्ठ और गौड़ को अश्रेष्ठ माना जाता था पर भामह इससे सहमत नहीं थे। दण्डी रीति को 'मार्ग' मानते हैं तथा वैदर्भ मार्ग को सभी दस गुणों से समाहित तथा गौड़ मार्ग को इसका विपर्यय मानते हैं।

वामन रीति के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं। वे कहते हैं– 'विशिष्ट पद रचना रीति हैं। विशिष्ट का अर्थ है गुण या काव्य शोभा कारक धर्म, शब्द और अर्थ के काव्य शोभा-कारक अलंकार भी होते हैं। इसलिए वामन ने गुण और अलंकार में भेद किया। वे गुण को नित्य और अलंकार को अनित्य धर्म मानते हैं। वामन के अनुसार रीतियाँ तीन हैं– वैदर्भ, गौड़ीय और पांचाली।

कुन्तक भी दण्डी की भाँति रीति को मार्ग कहते हैं। उनका कहना है कि मार्ग कवि स्वभाव पर आधारित होता है। जैसा कवि का स्वभाव होगा, वैसे ही मार्ग का चयन वह करेगा। वामन की देश आधारित रीतियों को कुन्तक अस्वीकार करते हैं। राजशेखर के अनुसार– 'वचनविन्यास का क्रम रीति हैं। मम्मट ने रीतियों को उपनागरिका, परुषा एवं कोमला नाम दिया है।

वामन ने रीति और गुण को अभिन्न मानकर रीति को अखंडता और पूर्णता दी पर बाद में आनन्दवर्धन मम्मट व विश्वनाथ आदि ने उसे रस का साधन घोषित कर दिया।

वामन की वैदर्भी, पांचाली और गौड़ीय रीतिया में रुद्रट चौथी 'लाटी' रीति जोड़ते हैं, राजशेखर इसमें 'मैथिली' रीति जोड़ते हैं, भोज छः रीतियों को मान्यता देते हैं– वैदर्भी, पांचाली, गौड़ीय, अवंतिका मागधी और लाटी।

वामन ने रीति के आधारभूत तीन तत्वों की चर्चा की है– गुण, दोष और अलंकार।

गुण

गुणों के स्वरूप व लक्षण का सर्वप्रथम स्पष्ट व विशद वर्णन वामन ने ही किया– 'काव्य शोभायाः कत्तारौ धर्माः गुणाः।' यह लक्षण इतना व्यापक है कि इसके अनुसार वे सारे तत्व जिससे काव्य सौन्दर्य की सृष्टि होती है, गुणों के अन्तर्गत आ जाते हैं। वामन ने ओज, प्रसाद, श्लेख, समतासमाधि, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थव्यक्ति, कान्ति इस दस प्रकार के शब्द गुणों और इन्हीं नामों से अर्थगुणों का वर्णन किया।

दोष

रीति का दूसरा महत्वपूर्ण आधार दोष है। जब तक कोई रचना दोष शून्य नहीं होगी, तब तक उसमें गुणों का समन्वय भी सौन्दर्य की सृष्टि करने में सक्षम नहीं होगा। अतः रचनाकारों को दोषों का ज्ञान भी अपेक्षित है। वामन ने दोषों की परिभाषा दी है– 'गुणविपर्ययात्मानो दोषाः' अर्थात् गुण के विपर्यय का नाम दोष है। वामन ने दोषों के तीन प्रकार बताए हैं– 1) पद दोष– इसके अन्तर्गत असाधु कष्ट, ग्राम्य, अप्रतीत, और अनर्थक 2) वाक्य दोष– इसके अन्तर्गत व्यर्थ, एकार्थ, संदिग्ध, अप्रयुक्त, अपक्रम, अलोक तथा विद्याविरुद्ध का विवेचन है।

अलंकार

अलंकारवादी आचार्य अलंकार को काव्य का 'नित्य' धर्म मानते थे पर वामन अलंकार को काव्य का 'अनित्य' धर्म स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि सौन्दर्य उत्पन्न करने की शक्ति गुणों में है पर अलंकार सौन्दर्य उत्पन्न नहीं कर सकते वे केवल पहले से विद्यमान सौन्दर्य की अभिवृद्धि कर सकते हैं। वामन ने अलंकारों को शब्दालंकार और अर्थालंकार में विभाजित कर शब्दालंकारों में यमक और अनुप्रास को ही मान्यता दी, शेष को इन्हीं के भेदों में स्वीकार किया तथा अर्थालंकारों में उपमा को सर्वश्रेष्ठ माना और शेष का उपमा के विभिन्न रूपों व भेदों के रूप में वर्णन किया।

वामन ने रीति के तीन भेद स्वीकार किए– वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली। वैदर्भी को उन्होंने समस्त गुणों से समन्वित माना, गौड़ी में मात्र ओज एवं कान्ति तथा पांचाली में माधुर्य और सौकुमार्य गुणों को स्वीकार किया।

1.3.4 ध्वनि संप्रदाय

ध्वनि संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन हैं। ये 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा मानते हैं और ध्वनि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध व्यंजना शब्द शक्ति से है। अतः ध्वनि संप्रदाय को जानने के पूर्व शब्द शक्तियों को जानना आवश्यक है।

काव्य में शब्द और अर्थ का सहयोग होता है अर्थात् शब्द एवं अर्थ काव्य के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। शब्द वह सार्थक ध्वनि समूह है जिसे हम सुनते हैं और सुनकर हम जो समझते हैं, वह अर्थ है। शब्द को सुनकर अर्थ का बोध होता है, अतः शब्द बोधक है और अर्थ बोध्य है। दोनों में बोध्य-बोधक सम्बन्ध है। शब्द का अर्थ निश्चित नहीं होता– वक्ता, श्रोता, काल, चेष्टा, अन्यसन्निधि तथा प्रकरण आदि के आधार पर अर्थ निश्चित होता है।

जिस शक्ति के आधार पर अर्थ निश्चित होता है, उसे शब्द शक्ति कहते हैं। इसके तीन प्रकार हैं– अभिधा शब्द शक्ति, लक्षणा शब्द शक्ति तथा व्यंजना शब्द शक्ति। शब्द से वाच्यार्थ का बोध कराने वाली अभिधा शब्द शक्ति है, लक्ष्यार्थ का बोध कराने वाली लक्षणा शब्द शक्ति है तथा व्यंग्यार्थ का बोध कराने वाली व्यंजना शब्द शक्ति है।

BHDC-106.indd 11 19-03-2021 08:51:32

अभिधा शब्द शक्ति

शब्द के मुख्य अर्थ अर्थात् वाच्यार्थ का बोध कराने वाली शक्ति अभिधा है। इस शक्ति से तीन प्रकार के शब्दों का अर्थ बोध होता है।

1) **रूढ़** : जिन शब्दों की व्युत्पत्ति नहीं होती, प्रकृति, प्रत्यय के प्रयोग व उनके अर्थ की अपेक्षा नहीं होती तथा समूचे शब्द के प्रयोग की किसी विशेष अर्थ में प्रसिद्धि होती है उन्हें रूढ़ शब्द कहते हैं, जैसे– पेड़, घोड़ा, घड़ा, गढ़, आदि। इनके अवयवों को पृथक नहीं किया जा सकता। ऐसे शब्दों का अर्थबोध अभिधा शब्द शक्ति से होता है।

2) **यौगिक** : ये व्युत्पत्तिपरक शब्द होते हैं, इनमें उपसर्ग व प्रत्यय का भी योग होता है, इसमें शब्दों के अवयवों को अलग करके उनका अर्थ करते हैं, तत्पश्चात् उनके अर्थ को मिलाकर समूचे शब्द का अर्थ ग्रहण करते हैं। जैसे– 'दिनकर' इसमें दो शब्द हैं– दिन और कर 'दिन' का अर्थ स्पष्ट है तथा 'कर' का अर्थ है करने वाला। अब मिलाकर अर्थ बना दिन करने वाला अर्थात– सूर्य। यह अर्थग्रहण अभिधा शब्द शक्ति से हुआ।

योगरूढ़

इसके अन्तर्गत वे शब्द आते हैं जो अवयवों से युक्त होते हैं और अवयवों के अर्थ से कई वस्तुओं का बोध होता है, किन्तु उस शब्द का प्रयोग किसी एक अर्थ के लिए रूढ़ हो जाता है। जैसे– 'वारिज' इसमें दो शब्द हैं वारि+ज वारि का अर्थ जल तथा ज का अर्थ उत्पन्न। इस तरह वारिज का अर्थ हुआ जल से उत्पन्न। जल से कई वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, जैसे शंख, सीप, मोती, कमल आदि किन्तु वारिज का अर्थ कमल के लिए रूढ़ हो गया है। अर्थात जो शब्द यौगिक होने के बावजूद किसी अर्थ के लिए रूढ़ हो जाते हैं उन्हें 'योगरूढ़' कहा जाता है और इनका अर्थबोध अभिधा शक्ति द्वारा होता है।

लक्षणा शब्द शक्ति

जहाँ अभिधा से निकलने वाला अर्थ अर्थात मुख्यार्थ बाधित हो जाता है और दूसरा अप्रसिद्ध या गौण अर्थ ग्रहण किया जाता है वहाँ लक्षणा शब्द शक्ति होती है। यह गौण अर्थ मुख्य अर्थ से सम्बद्ध होता है और रूढ़ि के सहारे ग्रहण किया जाता है। जैसे 'तुम निरे बैल हो' यहाँ वक्ता का अभिप्राय चौपाये बैल से नहीं है, अपितु उसके अड़ियलपन और मूर्खता से है। मूर्ख या अड़ियल कहने से वक्ता के अतिशय मूर्खता या अतिशय अड़ियलपन के भाव की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती इसलिए वह 'तुम निरे बैल हो' ऐसा कहता है। इस प्रकार यहाँ मुख्यार्थ से सम्बद्ध गौण अर्थ ग्रहण किया जा रहा है, यह कार्य लक्षणा शब्द शक्ति द्वारा किया जा रहा है। इसके दो भेद हैं–

रूढ़ा लक्षणा शब्द शक्ति

जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर रूढ़ि के सहारे मुख्यार्थ से सम्बद्ध दूसरा गौण अर्थ ग्रहण किया जाता है वहाँ रूढ़ा लक्षणा होती है जैसे– 'भारत अहिंसक है' इस वाक्य में भारत एक देश है, जो जड़ है वह अहिंसक कैसे होगा? परन्तु इसका लक्ष्यार्थ होगा भार के निवासी, यह अर्थ रूढ़ है। अब अर्थ बनेगा 'भारत के निवासी अहिंसक होते हैं'। यह अर्थ उपयुक्त है। इस तरह यहाँ 'रूढ़ा लक्षणा शब्द शक्ति 'सिद्ध होती है।

प्रयोजनवती लक्षणा शब्द शक्ति

जहाँ मुख्यार्थ बाधित होने पर किसी प्रयोजन की सिद्धि हेतु मुख्यार्थ से सम्बद्ध दूसरा गौण अर्थ ग्रहण किया जाए वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा शब्द शक्ति होगी। जैसे 'उसका गाँव गंगा पर हैं। यहाँ मुख्यार्थ गंगा का जल-प्रवाह बाधित है और मुख्यार्थ से सामीप्य का सम्बंध रखने वाले गंगा तट का अर्थ वांछित है। यह अर्थ गाँव की पवित्रता का संकेत करने के लिए किया गया है। इस प्रकार अर्थग्रहण में प्रयोजन होने से 'प्रयोजनवती लक्षणा शब्द शक्ति' है।

लक्षणा शब्द शक्ति के संदर्भ में यह ध्यान देने वाली बात है कि लक्ष्यार्थ मुख्यार्थ से सदैव सम्बद्ध होता है।

व्यंजना शब्द शक्ति

अभिधा एवं लक्षणा की सीमा को अतिक्रान्त करने वाली व्यंजना शब्द शक्ति होती है। व्यंजना से अभिव्यक्त होने वाले अर्थ को व्यंग्यार्थ भी कहते हैं– और इसी का दूसरा नाम 'ध्वनि' भी है। व्यंजना शब्द शक्ति के दो भेद हैं–

शाब्दी व्यंजना

जहाँ अनेक अर्थों का बोध कराने वाले शब्दों का एक ही अर्थ में नियन्त्रण हो जाने के बाद भी दूसरा अर्थ व्यंजित हो वहाँ शाब्दी व्यंजना होती है। इसमें शब्दों का पर्याय रख देने पर व्यंग्यार्थ लुप्त हो जाता है।

आर्थी व्यंजना

जहाँ पाठक या श्रोता वाच्य अर्थ से भिन्न एक दूसरे प्रतीयमान अर्थ की प्रतीति कर लेता है वहाँ आर्थी व्यंजना होती है। यह शक्ति अर्थ पर आश्रित है अतः शब्द परिवर्तन कर देने पर भी व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती रहेगी।

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि व्यंजना शब्द शक्ति से ग्रहण किया जाने वाला व्यंग्यार्थ ही ध्वनि है। ध्वनि के दो भेद हैं–

क) **अभिधामूला ध्वनि**

इसमें शब्द का वाच्यार्थ बना रहता हैं– किन्तु वह व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराता है। इसके दो भेद हैं–

संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि–

इसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक आने का क्रम लक्षित होता है जैसे–

माली आवत देखि कै कलियन करी पुकार।
फूले फूले चुनि लिए काल्हि हमारी बार।।

संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि के भी तीन भेद हैं– अ शब्द– शक्युद्भव अनुरणन ध्वनि ब अर्थशक्युद्भव अनुरणन ध्वनि स उभयशक्युद्भव अनुरणन ध्वनि।

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि–

इसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक आने का क्रम परिलक्षित नहीं होता। इसको रस ध्वनि भी कहते हैं क्योंकि वाच्यार्थ के साथ ही व्यंग्यार्थ ध्वनित होने लगता है।

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

जैसे–

पलंग पीठ तजि हिंडोश। सिय न दीन पग अवनि कठोरा।।
जिवन भूरि जिमि जोगवत रहेऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहेऊँ।।

यहाँ व्यवहारगत क्रियाओं के साथ करुण रस व्यंग्य है, अतः असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि है। इसके भी पाँच भेद हैं– पदगत, पदांशगत, वाक्यगत, वर्णगत, रचनागत, प्रबन्धगत।

ख) **लक्षणा मूला ध्वनि**–

इसमें वाच्यार्थ के बाधित होने के कारण लक्षणार्थ ही व्यंग्यार्थ की प्राप्ति कराता है। इसके भी दो भेद हैं–

(अ) **अर्थान्तर सवंमित वाच्य ध्वनि**– जहाँ वाच्यार्थ अपना पूर्ण तिरोभाव न करते हुए व्यंग्यार्थ में सवंमित हो जाता है। जैसे–

सीता हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाय।
जौ मैं राम त कुल सहित कहहि दसानन आय।।

यहाँ राम का अर्थ शंकर का धनुष तोड़ने वाले राक्षसों का नाश करने वाले पराक्रमी से है, व्यंग्यार्थ है कि शीघ्र ही रावण का भी विनाश होगा।

(ब) **अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि**– जहाँ वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग अर्थात तिरस्कार हो वहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि होती है। जैसे–

कहि न सकौं तब सुजनता अति कीन्हो उपकार।
सखे! करत यों रहु सुखी जीवहु बरस हजार।।

यहाँ अपकार करने वाले व्यक्ति के कार्यों से दुःखी व्यक्ति का कथन है। वाच्यार्थ अपकारी की प्रशंसा का है, पर अपकारी की प्रशंसा नहीं की जाती है अतः वाच्यार्थ बाधित है। अब वाच्यार्थ का तिरस्कार करके अति उपकार व्यंग्यार्थ अत्यन्त अपकार होगा।

ध्वनि को उत्तम काव्य माना गया है। ध्वनि वही मानी जाती है जहाँ व्यंग्यार्थ का चमत्कार वाच्यार्थ से उत्कृष्ट हो। आचार्यों ने ध्वनि का विशद एवं वैज्ञानिक विवेचन किया है। ध्वनि सिद्धान्त के महत्व को आधुनिक विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।

1.3.5 वक्रोक्ति सम्प्रदाय

काव्य में लालित्य भाषा के विशिष्ट प्रयोग से आता है। विशिष्ट भाषा से तात्पर्य है सामान्य से इतर। भामह ने भाषिक संरचना के आधार पर व्याकरण एवं न्याय से काव्य को श्रेष्ठ सिद्ध किया था। भामह काव्य सौन्दर्य के बीज कारण को 'वक्रोक्ति' कहते हैं और कवि वाणी को 'वक्र वाचा कवीनां' कहते हैं। वक्रोक्ति का अर्थ है सामान्य कथन से भिन्न टेढ़ी उक्ति। वक्रोक्ति को अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्ति जीवित' में आचार्य कुन्तक ने सिद्धान्त रूप में व्यवस्थित किया। कुन्तक काव्य की परिभाषा करते हैं– 'कवेः

कर्म काव्यम्' और काव्य क्या है? 'सालंकारस्य काव्यता' अर्थात अलंकारों के साथ काव्यता आती है। कुन्तक ने अलंकार और अलंकार्य को भी समझाया – अलंकार और अलंकार्य समझने के लिए पृथक होते हैं वस्तुतः होते नहीं। अलंकार से युक्त शब्द और अर्थ में ही काव्यता होती है। यदि अलंकार और अलंकार्य की पृथकता काव्य में दिखाई देती है तो काव्यता क्लिष्ट हो जाएगी ऐसी कुन्तक की मान्यता है। उन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है–

शब्दार्थोसहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाहलादकारिणि।।

अर्थात वक्र कवि व्यापार वाले तद्विदौ (काव्यमर्मज्ञों) के लिए आह्लादक बन्ध में व्यवस्थित शब्द अर्थ काव्य है। कुन्तक का मानना है कि शब्द अर्थ अलंकार्य हैं और वक्रोक्ति अलंकार। इसी धारणा के कारण कुन्तक स्वभावोक्ति को अलंकार नहीं मानते। सौन्दर्य-विधान करने वाली वक्रोक्ति ही कुन्तक को प्रिय है। कुन्तक ने वक्रोक्ति के छः भेद बताए हैं– वर्ण विन्यास वक्रता, पद पूर्वार्द्ध वक्रता, पदपरार्ध वक्रता, वाक्य वक्रता, प्रकरण वक्रता और प्रबन्ध वक्रता। वर्ण शब्द की लघुतम इकाई है और प्रबन्ध रचना की दीर्घतम इकाई इन दोनों तथा इन दोनों के बीच आने वाले समस्त रचनात्मक अवयवों में कुन्तक वक्रोक्ति की उपयुक्त अवस्थिति होने पर ही काव्य को सुनिश्चित करते हैं।

1.3.6 औचित्य सम्प्रदाय

भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा अत्यधिक प्राचीन है। माना जाता है कि ईसा पूर्व पाँचवी-छठी शताब्दी की रचना भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' है। तब से लेकर ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ तक भारतीय काव्यशास्त्र में रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति ये पाँच सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हो चुके थे।

किन्तु काव्य के आधारभूत तत्व का निर्णय नहीं हो पाया था, जिसे सर्वमान्य स्वीकृति मिल सके। ऐसे समय में आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य सम्प्रदाय' की स्थापना की और काव्यात्या सम्बंधी विवाद को सुलझाने का काम किया। आचार्य क्षेमेन्द्र औचित्य को 'काव्य का जीवित' कहते हैं। उनका कथन है कि औचित्य के अभाव में अलंकारों, गुणों, रीतियों आदि का कोई महत्व नहीं है। औचित्य ही काव्य का स्थिर धर्म है। औचित्य का संकेत भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में भी है–

अदेश जो हि वेशस्तु न शोभां जनयिष्यति।

मेखलो रसि बन्धे च हास्यैनोपजायति।।

क्षेमेन्द्र औचित्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं–

उचिंत प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।

उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।

अर्थात् जो जिसके योग्य है आचार्य गण उसे उचित कहते हैं। उचित का भाव ही औचित्य है। काव्य रचना में विभिन्न वस्तुओं व उपादानों का वर्णय वस्तु से सामंजस्य बनाए रखना औचित्य है। यह सापेक्ष्य वस्तु है। अत्यधिक आभूषणों का उपयोग ग्रामीण स्त्री के लिए उचित और नागरिक के लिए अनुचित है। नीम का चारा गौर के लिए

BHDC-106.indd 15 19-03-2021 08:51:32

अनुचित और ऊँट के लिए उचित है। यह औचित्य ही सौन्दर्य का मूल कारण है। विवाह के अवसर पर शोकगीत और मृत्यु के समय विवाह गीत औचित्य के अभाव में उपहासास्पद ही होंगे। आचार्य क्षेमेन्द्र ने कहा है– यदि कोई सुन्दर स्त्री अपने गले में मेखला, नितम्ब पर हार, हाथों में नूपूर और पैरों में केयूर पहने तो उसके इस अनुचित पहनावे पर कौन नहीं हँसेगा ?

वास्कतविकता तो यह है कि काव्य ही नहीं मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में उसकी दिनचर्या में एवं उसके व्यवहार एवं क्रिया-कलाप में भी औचित्य का अनिवार्य व महत्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्य के अत्यन्त सूक्ष्म अवयव से ले कर विशदतम् रूप को ध्यान में रखते हुए औचित्य के भेदों की विस्तृत चर्चा की है। काव्य शरीर के आधारभूत औचित्य की स्थिति प्रमुख रूप से जहाँ–जहाँ है, वे सब औचित्य के अंग हैं जिनकी संख्या 28 है– 1. पद 2. वाक्य 3. क्रिया 4. कारक 5. लिंग 6. वचन 7. विशेषण 8. उपसर्ग 9. नियात 10. प्रबन्ध 11. गुण 12. अलंकार 13. रस 14. सार-संग्रह 15. तत्व 16. आशीर्वाद 17. काव्य के अन्य अंग 18. व्रत 19. तत्व 20. अभिप्राय 21. स्वभाव 22. प्रतिभा 23. विचार 24. नाम 25. काल 26. देश 27. कुल 28. अवस्था।

स्पष्ट है कि आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्य के वस्तु एवं शिल्प सर्वत्र औचित्य का विधान किया हैं। इस औचित्य से काव्य में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा होती है और इसके अभावमें काव्य-सौन्दर्य नष्ट होता है।

भारतीय काव्यशास्त्र में औचित्य की प्रतिष्ठा बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे रीति, वक्रोक्ति, अलंकार की चमत्कारी प्रवृत्ति पर अंकुश लगा और स्वाभावोक्ति को महत्व दिया जाने लगा। परन्तु यह भी सत्य है कि औचित्य काव्य के मूल सौन्दर्य की सृष्टि कर सकने में असक्षम है, इसलिए काव्य जीवित अथवा काव्यात्मा की उपाधि औचित्य को नहीं दी जा सकती है।

1.4 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त स्पष्ट है कि समस्त भारतीय सम्प्रदाय सौन्दर्य अथवा वैशिष्ट्य को ही काव्य का मूल स्वीकार करते हैं। विभिन्न आचार्यों द्वारा यह सौन्दर्य रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि तथा औचित्य इन रूपों में वर्णित किया गया है। इस विवेचन से यह भी स्पष्ट है कि ये सारे सम्प्रदाय भिन्न मत रखते हुए काव्य के किसी एक तत्व की ही प्रमुखता से चर्चा करते हैं पर सारी कसरत काव्यास्वाद या काव्यानन्द हेतु होती है।

स्वाद लेते समय यह सभी का अनुभव है कि यह समग्रता में ही होता है। भौतिक अनुभव भी यही सिद्ध करता है। शिकंजी पीते समय पानी, चीनी, नींबू का स्वाद अलग-अलग नहीं एक साथ होता है और वह भी नये रूप में। यह केवल पानी, केवल चीनी का या केवल नींबू का स्वादी नहीं होता बल्कि इनसे पृथक ही शरबत का स्वाद होता है। यही समग्रता काव्य में भी आस्वाद का मूल होती है। जिन सम्प्रदायों की चर्चा ऊपर की गयी है उनके द्वारा वर्णित विभिन्न काव्य-तत्वों का औचित्य गत वर्णन ही कवि और सहृदय के अभीष्ट होते हैं।

BHDC-106.indd 16 19-03-2021 08:51:32

अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य आदि काव्य में सौन्दर्य की सृष्टि करने वाले विभिन्न उपादान हैं, इन्हें काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकृति देना उचित नहीं है। इनका महत्व मात्र इस बात में है कि ये काव्य के विभिन्न अवयवों के रूप एवं महत्व को प्रतिपादित करते हैं। काव्य की आत्मा तो सौन्दर्य है जिसे भारतीय आचार्यों ने शोभा, चारुता आदि शब्द दिये हैं, रस इसी काव्य-शोभा, काव्य चारुता या काव्य-सौन्दर्य की अनुभूति है।

1.5 अवधारणात्मक शब्द

स्वानुभूति : अपनी अनुभूति।

काव्यास्वादी : काव्य का स्वाद अर्थात काव्य पाठ या श्रवण से प्राप्त होने वाला आनन्द।

विभाव : विभावयन्ति इति विभावाः अर्थात वे पदार्थ या व्यक्ति जो भावों को उत्तेजित करने वाले कारण होते हैं। विभाव के दो भेद हैं, आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव।

आलम्बन विभाव : सहृदय के हृदय में भावों का उद्गम जिस भाव या वस्तु के कारण होता है उसे आलम्बन विभाव कहते हैं। इसके अन्तर्गत काव्य या नाटक में वर्णित विषय या विभिन्न वेशभूषा का अवलम्ब धारण करने वाले पात्र आदि आते हैं।

उद्दीपन विभाव : स्थायी भावों को उद्दीप्त कर आलम्बन योग्य बनाने वाले और उन्हें रसावस्था तक पहुँचाने वाले उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। जैसे– चन्द्रोदय, कोकिल-कूजन पात्रों की व्यंग्योक्ति या दर्पोक्ति आदि।

अनुभाव : स्थायी एवं संचारी भावों के उदय के उपरान्त जो शारीरिक एवं मानसिक भाव-भंगिमाएँ दिखायी देती हैं वे अनुभाव कहलाती हैं। प्रत्येक रस के अनुसार ये अनुभाव भी पृथक-पृथक होते हैं। जैसे विरह की दशा में अश्रुपात या सिसकियाँ भरना, क्रोध की दशा में आँखों का लाल होना, ओठों का फड़कना आदि। अनुभावों की संख्या चार है– कायिक, मानसिक, आहार्य और सात्विक।

व्यभिचारी : व्यभिचारी भाव स्थायी भावों के साथ संचारित होते रहते हैं इसलिए इन्हें संचारी भाव भी कहा जाता है। ये केवल थोड़ी देर के लिए स्थायी भावों को पुष्ट करने के लिए आते हैं फिर लुप्त हो जाते हैं।

तद्रुपतानुसंधान : अभिनेता का उस ऐतिहासिक पात्र का जिसका वह अभिनय कर रहा है तद्रूप अर्थात उसी के जैसा आकृति वेशभूषा हावभाव के द्वारा अभिनय करना और सहृदय का उसे उसी रूप में ग्रहण कर लेना 'तद्रुपतानुसंधान' है।

उत्पाद्य-उत्पादक सम्बंध ' भट्टलोल्लट भरत मुनि के रस सूत्र के 'निष्पत्ति' शब्द का अर्थ उत्पत्ति करते हैं। यह उत्पत्ति रस की है तो रस उत्पाद्य है और विभावादि कारण हैं अतः वे उत्पादक हैं। रस तथा विभावों के बीच कारण तथा कार्य का सम्बन्ध है क्योंकि रस की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं अतएव उत्पाद्य एवं उत्पादक सम्बंध की कल्पना करते हैं।

भोज्य-भोजक सम्बन्ध : आचार्य भट्टनायक रस की 'भुक्ति' अर्थात भोग की बात करते हैं। निष्पत्ति का अर्थ वे भुक्ति ही करते हैं। विभावादि भोजक तथा रस भोज्य है जिसका भोग सहृदय करता है।

भावकत्व : आचार्य भट्टनायक रस की भुक्ति में तीन सोपानों की चर्चा करते हैं– अभिधा, भावकत्व तथा भोजकत्व। अभिधा के द्वारा सहृदय को काव्यगत सामान्य अर्थ का ज्ञान होता है और भावकत्व की स्थिति में सहृदय 'अयं निजः परोवेति' की भावना से ऊपर उठकर साधारण मानव की भावभूमि पर आ जाता है और काव्यगत आनन्द का स्वाद लेने के योग्य हो जाता है तत्पश्चात भोजकत्व के सोपान पर वह रस का भोग करता है।

व्यंग्य-व्यंजक सम्बन्ध : आचार्य अभिनवगुप्त मानते हैं कि संयोग का अर्थ व्यंग्य-व्यंजक के अन्तःकरण में सदैव विद्यमान रहते हैं जिनमें रसानुभूति की क्षमता होती हैं। विभावादि के व्यंजक स्वरूप से संयोग होते ही रस की अभिव्यक्ति होती है।

नित्य-अनित्य : सदैव विद्यमान रहने वाला नित्य और कभी-कभी उपस्थित होने वाला अनित्य है। आचार्य वामन के गुणों को काव्य का नित्य धर्म और अलंकारों को काव्य का अनित्य धर्म स्वीकार करते हैं।

अलंकार : सौन्दर्य वृद्धि के उपादान अलंकार हैं।

अलंकार्य : जिस वस्तु या व्यक्ति की सौन्दर्य वृद्धि की जाय, वह अलंकार्य है।

ध्वनि : दो वस्तुओं के घर्षण से सुनायी देने वाली चीज ध्वनि है। हमारे उच्चारण अवयवों से होती हुई बाहर आने वाली श्वास वायु घर्षण करती हुई बाहर निकलती है, इसी घर्षण से ध्वनि उत्पन्न होती है।

अनुमितिवाद : यह आचार्य शंकुक का रस विषयक सिद्धान्त है शंकुक 'चित्र तुरंग न्याय' के आधार पर यह सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। जैसे हम घोड़े का चित्र देखकर घोड़े का अनुमान कर लेते हैं, उसी प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के अनुमान से रस की अनुमिति कर लेते हैं।

1.6 उपयोगी पुस्तकें

भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिंदी आलोचना– डॉ. रामचन्द्र तिवारी विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र– डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1

भारतीय काव्यशास्त्र– प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1

भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा– डॉ. नागेन्द्र

1.7 बोध प्रश्न

1) काव्यशास्त्र का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

2) भरत मुनि के रस सूत्र को स्पष्ट कीजिए।

3) अलंकार एवं अलंकार्य में अन्तर बताइए।

4) रस सम्प्रदाय का परिचय दीजिए।

5) अलंकार सम्प्रदाय की विकासात्मक यात्रा का वर्णन कीजिए।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) देखिए भाग-1.2

2) देखिए उपभाग-1.3.1

3) देखिए उपभाग-1.3.2

4) देखिए उपभाग-1.31

5) देखिए उपभाग-1.32

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY